दिसम्बर 2025, मूल्य : 40

पूर्वा

सृजन की उड़ान

संपादक
अपूर्व

महाप्रबंधक
अमित कुमार

शब्द-संयोजन
उषा ठाकुर

आवरण फोटो : अंतरिक्ष
आवरण पृष्ठ : जनार्दन कुमार सिंह
रेखाचित्र : आस्था

मूल्य :

प्रति	:	रु. 40.00
वार्षिक, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	रु. 1000.00
आजीवन, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	रु. 10000.00

भुगतान इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसाइटी के नाम से किया जाए।
भुगतान ऑनलाइन या सीधे बैंक में भी जमा कर सकते हैं।
बैंक : UNION BANK
खाता संख्या : 520101255568785
IFSC : UBIN **0905011**
बैंक शाखा : जी-28, सेक्टर-18, नोएडा-201301
उत्तर प्रदेश

प्रकाशक

इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसाइटी
बी-107, सेक्टर-63, नोएडा-201309
गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश
दूरभाष : 0120-4330755
editor@pakhi.in
pakhimagazine@gmail.com
www.facebook.comèpakhimagazine
Web portal : www.pakhi.in

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अंतर्गत विचारणीय। स्वामित्व इंडिपेंडेंट मीडिया इनिशिएटिव सोसाइटी के लिए प्रकाशक, मुद्रक नारायण सिंह राणा द्वारा चार दिशाएं प्रिंटर्स प्रा.लि. जी-39, नोएडा से मुद्रित एवं बी-107, सेक्टर 63, नोएडा से प्रकाशित।

वर्ष : 18, अंक 3, दिसंबर, 2025

अनुक्रमणिका

संपादकीय/अपूर्व

हाथ में पत्थर क्यों?-2 4

चिट्ठी आई है 6

कहानियां

धंधा-पानी	:	गोविंद उपाध्याय	9
कमली	:	दिनेश पाठक	14
एक बात जो रह गई	:	गोपाल सोनी	27
सुलगती आखिरी सिगरेट	:	मीनाधर पाठक	31
साक्षी है सखुआ	:	विभीषण कुमार	37
वचन-पत्र	:	हरियश राय	51

कविताएं/ग़ज़लें

देवेश पथ सरिया की कविताएं 56

कुणाल की कविताएं 58

हर्षित नैलवाल की कविताएं 60

इंद्रपाल सिंह तन्हा की ग़ज़लें 62

सरोज कुमारी की कविताएं 63

संघमित्रा की कविता 65

मूल्यांकन

शोषण और दमन के विविध रूपों को उजागर करती कहानियां : दीपक गिरकर 66

क्षीण होते सामाजिक मूल्यों की गहन पड़ताल : वेद प्रकाश सिंह 70

साक्षात्कार

महिला अस्मिता के खिलाफ कोई भी सवाल महिलाएं अब स्वीकार करने को तैयार नहीं... 73

आलेख

शंभु बादल तथा अन्य कवियों का तुलनात्मक अध्ययन : विशेषकर झारखण्ड के संदर्भ में : ममता भारती 79

कसौटी पर प्रेमचंद की कहानियों का यथार्थ : सुशील कुमार 84

स्थाई स्तंभ

कल्पित कथन

झीनी-झीनी बीनी चदरिया : 75 के अब्दुल बिस्मिल्लाह : कृष्ण कल्पित 89

सत्याग्रह

नए शब्द, नए रिश्ते, नए खतरे : प्रियदर्शन 92

द पर्पल पॉइंट

शादी : परंपरा की आड़ में स्त्री-विरोध : शोभा अक्षर 94

हाथ में पत्थर क्यों-2

यौन उत्पीड़न जैसे संवेदनशील मामलों में जब कोई महिला किसी व्यक्ति पर आरोप लगाती है तो समाज की भावनाएं तुरंत उबल पड़ती हैं। लोग न्याय की प्रतीक्षा नहीं करते, जांच की आवश्यकता नहीं समझते और न ही यह विचार करते हैं कि क्या कोई औपचारिक शिकायत दर्ज हुई है या नहीं। भीड़ का फैसला तुरंत सुना दिया जाता है कि फंला व्यक्ति दोषी है। सोशल मीडिया पर उसकी निंदा शुरू हो जाती है, मीम्स बनते हैं, पोस्ट्स वायरल होती हैं और कुछ ही घंटों में उसकी वर्षों की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाती है। यह वह युग है जहां न्याय की प्रक्रिया पीछे रह जाती है और सनसनी उसकी जगह ले लेती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 हर नागरिक को समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और जीवन व गरिमा का अधिकार देते हैं। इन अधिकारों का मूल सार यह है कि किसी व्यक्ति को तब तक दोषी नहीं माना जा सकता जब तक कि उसका अपराध विधि सम्मत प्रक्रिया द्वारा सिद्ध न हो जाए। किंतु आज सोशल मीडिया और भीड़ की मानसिकता ने इस सिद्धांत को उलट दिया है। अब आरोप लगते ही व्यक्ति अपराधी मान लिया जाता है। यह प्रवृत्ति नैसर्गिक न्याय के उस बुनियादी सिद्धांत का सीधा उल्लंघन है जिसे Audi Alteram Partem कहा जाता है–अर्थात् 'दूसरे पक्ष को भी सुना जाए।'

सुप्रीम कोर्ट ने इस विषय पर कई बार सख्त टिप्पणियां की हैं। वर्ष 2012 में सहारा इंडिया रियल इस्टेट कार्प. लि. बनाम सेबी (2012) मामले में न्यायालय ने कहा था कि मीडिया या किसी भी सार्वजनिक माध्यम द्वारा किसी व्यक्ति को जांच या मुकदमे से पहले दोषी ठहराना न्याय प्रक्रिया में हस्तक्षेप के समान है। अदालत ने भी यह स्पष्ट कहा था कि 'जब तक कोई अपराध विधिक रूप से सिद्ध न हो तब तक किसी व्यक्ति को अपराधी घोषित नहीं किया जा सकता। ऐसा करना निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन है।'

इसी प्रकार नीलेश नवालखा बनाम भारत गणराज्य (2021) में सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की थी कि 'ट्रायल बाय मीडिया न्यायिक निष्पक्षता को नष्ट करता है।' कोर्ट ने कहा था कि 'मीडिया या सोशल प्लेटफॉर्म को यह अधिकार नहीं कि वे जांच एजेंसियों या अदालत की भूमिका अपने हाथ में ले लें, प्रत्येक व्यक्ति को निष्पक्ष सुनवाई और जांच का संवैधानिक अधिकार प्राप्त है।' वर्ष 2016 में सुब्रह्मण्यम स्वामी बनाम भारत गणराज्य केस में अदालत ने कहा कि 'किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार है और उसे किसी अफवाह या अप्रमाणित आरोप से नष्ट नहीं किया जा सकता।'

इन निर्णयों के आलोक में देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि न्यायालय आरोप को सजा नहीं मानता लेकिन समाज और मीडिया अब इस भेद को मिटा चुके हैं। एक ओर संविधान कहता है कि न्याय साक्ष्य से तय होता है, भावना से नहीं, दूसरी ओर सोशल मीडिया के मंचों पर न्याय 'भावनात्मक बहस' बन गया है। वहां स्क्रीनशॉट्स, कथनों और सुनी-सुनाई बातों को साक्ष्य बना लिया जाता है।

'मी टू' आंदोलन का उदाहरण भी इसी जटिलता को उजागर करता है। इस आंदोलन ने कई पीड़ित महिलाओं को साहस दिया लेकिन इसके साथ ही इसने कुछ झूठे या अतिशयोक्त आरोपों का द्वार भी खोल दिया। अनेक मामलों में महिलाओं ने पुलिस में कोई शिकायत दर्ज नहीं कराई, न ही कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया लेकिन सोशल मीडिया ने आरोपियों को दोषी घोषित कर दिया। बाद में जब जांच में आरोप निराधार पाए गए तब तक उन व्यक्तियों का सामाजिक जीवन करियर और मानसिक संतुलन सब नष्ट हो चुका था। कानून की दृष्टि में बिना एफआईआर या जांच के कोई व्यक्ति 'कानूनी आरोपी' नहीं होता, लेकिन समाज उसे 'नैतिक अपराधी' बना देता है।

मेरा दृढ़ मत है कि नैसर्गिक न्याय केवल अदालतों का सिद्धांत नहीं, बल्कि समाज की नैतिक जिम्मेदारी भी है। प्राचीन यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने कहा था 'न्याय वह है जो बिना क्रोध और बिना पक्षपात के दिया जाए।' रोमन विचारक सेनेका ने लिखा 'जो व्यक्ति बिना सुनवाई के फैसला करता है, वह न्याय नहीं करता, वह बदला लेता है।' आज की दुनिया में जब सोशल मीडिया पर आरोप लगते हैं और लोग बिना जांच के निर्णय सुनाने लगते हैं तो यह वही 'बदले की संस्कृति' है जिसके प्रति सेनेका ने चेताया था।

भारतीय न्याय संहिता की धाराएं 74, 75-ए, 78-डी और 65 महिला सम्मान से जुड़े अपराधों के लिए कठोर दंड का प्रावधान करती हैं किंतु इन धाराओं का उपयोग तभी होता है जब शिकायत दर्ज की जाती है और साक्ष्य प्रस्तुत होते हैं।